P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-3* (Part-1) November- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भारतीय परिदृश्य में नारी विकास के विविध आयाम ऐतिहासिकता से वर्तमान संदर्भ में

आशा सुनारीवाल
सह प्राध्यापक,
शिक्षा विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
सूरतगढ़, राजस्थान

सारांश

किसी भी राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति के निर्माण तथा विकास में नारी का योगदान बहुत महत्वपूर्ण होता है। यदि हम विश्व इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमें पता चलता है कि संस्कृति की नींव डालने का श्रेय सर्वप्रथम नारी को ही दिया जाता है। जिस तरह परिवार में नारी व पुरुष के कार्य स्थान भिन्न होते हैं उसी तरह समाज में भी नारी और पुरुषों के कार्यों में भिन्नता पाई जाती है। भारत में महिलाओं की स्थिति सदैव एक समान नहीं रही उनकी स्थिति में वैदिक युग से लेकर आधुनिक काल तक अनेक उतार–चढ़ाव आ रहे हैं और उनके अधिकारों में बदलाव भी होते रहे हैं। वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति सुदृढ़ थी। परिवार तथा समाज में उन्हें सम्मान प्राप्त था। उनको शिक्षा का अधिकार प्राप्त था, और संपत्ति में भी उनको बराबरी का हक था। सभा और समितियों में भी वह स्वतंत्रता पूर्वक भाग लेती थी 11 वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी के बीच महिलाओं की स्थिति दयनीय होती नजर आती है एक तरफ जहां महिलाओं के सम्मान विकास और सशक्तिकरण का अंधकार में युग शुरू होता है। इस समय महिलाओं को उपभोग की वस्तु बना दिया गया और उसके कारण बाल विवाह, बहुविवाह, सती प्रथा, अनमेल विवाह, पर्दा प्रथा और अशिक्षा आदि विभिन्न सामाजिक कुरीतियो का समाज में प्रवेश हुआ इससे महिलाओं की स्थिति दयनीय बनी और उनके निजी व सामाजिक जीवन में क्लेश शुरू हुआ। मध्यकाल में विदेशी आक्रांता के आगमन से स्त्रियों की स्थिति और भी गिरावट आई। स्त्रियों की शिक्षा का कोई प्रबंध नहीं था घर की चारदीवारी में स्त्री का जीवन सिमट गया। नारी को अबला रमणी माना जाने लगा। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में और 19 वीं सदी के पूर्वार्ध में भारत में पुर्नजागरण कालीन नेता जैसे राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, ईश्वर चंद्र विद्यासागर आदि ने और 20 वीं सदी मे स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं ने सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाई और इस संबंध में अनेक कानून बनवाये। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही सरकार ने उनकी आर्थिक,सामाजिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार लाने और उनको विकास की मुख्यधारा से जोड़ने हेतु अनेक कल्याणकारी योजनाएं एवं विकासात्मक कार्यक्रमों की शुरुआत की जिससे उनकी स्थिति में काफी सुधार आया, तथापि समाज में कन्या भ्रूण हत्या, बलात्कार, शारीरिक और मानसिक घरेलू हिंसा, बाल अपराध निरंतर बढ़ रहे है। अभी हमारे सामाजिक और पारिवारिक सोच में पुरुष प्रधान प्रवृत्ति ही दिखाई देती है यही वजह है कि स्त्री सशक्तिकरण होते हुए भी स्वंयम् को असहाय, बेबस और शोषित पाती है। आज भी वह अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही है और एक युग में अपने व्यक्तित्व को तलाशने की लड़ाई लड़नी होगीं। प्राचीन काल में भारतीय समाज में नारी का जो सम्मानजनक स्थान दिखाई पड़ता है और परिवार में जो उसकी स्थिति गौरवपूर्ण दिखाई पड़ती है, स्त्री को सम्मानजनक और बराबरी का स्थान प्राप्त था, लेकिन वर्तमान में हमकहने को तो उन्हें बराबरी और स्वतंत्रता अधिकार देते हैं सशक्त बनाने के लिए प्रयास करते हैं तथापि मानसिकता से हम अपनी सोच को पूरी तरह से परिवर्तित नहीं कर पाए इसलिए उसके प्रत्येक कार्य में भी दोष निकाल लेते हैं। इसलिए हमें अभी अपनी मानसिक सोच को और अधिक सशक्त सम्मानजनक बनाने की आवश्यकता महसूस करते हैं।

मुख्य शब्द : भारतीय संस्कृति, नारी सशक्तिकरण।

प्रस्तावना

भारतीय परंपरा और चिंतन में स्त्री का अधिक महत्व है हमारा अतीत भी इस बात का साक्षी है कि भारतीय संस्कृति में नारी को शक्ति स्वरूपा माना गया है नारी स्वयं को अनेक रूपों में अभिव्यक्त करने में सक्षम है वह एक आदर्श

है ममतामई मां, संस्कारी बहन और बेटी है वह अपने अनेक रूपों को निभाते हुए अपने दायित्वों का निर्वहन तन्मयता से करती है फिर भी उसे समाज में तिरस्कार झेलना पड़ता है। प्रस्तुत शोध पत्र समाज में महिलाओं की भूमिका तथा उनके साथ होने वाले भेदभाव, सामाजिक तिरस्कार, निम्नतर स्थिति, घटते मानवीय मूल्यों की रूपरेखा प्रस्तुत करता हैं। सामाजिक संरचना के यथार्थ का आधार परिवार होता है इस बारे में अधिक मतभेद नहीं है अगस्त काम्टे से लेकर समकालीन समाजशास्त्रीय ने इस तथ्य को स्वीकार किया है। परिवार एक सार्वभौमिक सच्चाई है यह केवल मानव समाज में ही मिलता हो ऐसा नहीं है पशु समाज में भी परिवार का अस्तित्व किसी ना किसी रूप में मिलता है सच तो यह है कि किसी भी सामाजिक संरचना को उसकी संपूर्णता में यदि समझना है और समझाना है तो हमें अनिवार्यता परिवार से ही शुरू होना पड़ेगा। परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र का निर्माण होता है, यदि हम विश्व इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमें पता चलता है कि संस्कृति की नींव डालने का श्रेय सर्व प्रथम नारी को ही दिया जाता है,

प्रकृति की संरचना के दो उपादान स्त्री और पुरुष की समानता पर ही स्वस्थ समाज का अस्तित्व तथा विकास कायम रह सकता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में नारी अनेक उत्थान और पतन की साक्षी रही है किसी भी समाज का स्वरूप वहां की महिलाओं की स्थिति पर निर्भर करता है। जिस समाज में महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ और सम्मानजनक होती है। वह समाज भी सुदृढ़ और मजबूत होगा क्योंकि महिलाएं समाज की आदि जनशक्ति होती है। समाज में व्यक्ति की पदस्थिति और भूमिका समसामायिक, सामाजिक मूल्य तथा आदर्शो पर निर्भर करती है। समय के साथ–साथ परम्परागत आदर्शो व मूल्यों में भी परिवर्तन होते रहते है। व्यक्ति शब्द के उच्चारण में यद्यपि पुरूष और स्त्री दोनों समाहित है। पर सभ्यताओं के विकास ने स्त्री और पुरूष को दो अलग–अलग खेमों में वर्गीकृत कर दिया है। भारत ही नहीं विश्व की सभ्यतम कहीं जाने वाली परम्पराओं में स्त्री के प्रति विशिष्ट दृष्टिकोण नारी छवि के विवेचन का महत्वपूर्ण मानदण्ड है। प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय समाज में विभिन्न काल में नारी की विभिन्न स्थितियों का मनन् करता है।

अध्ययन की शोध प्रविधि

लघु सर्वेक्षण, पत्र–पत्रिकाएं, जनर्लस, द्वितीयक स्त्रोत पर आधारित है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. नारी पुरूष की प्रतिस्पर्द्धा नहीं है। सहचरी है, अतः उसके मानवाधिकारों का हनन नहीं किया जा सकता।
2. भारतीय संस्कृति की गौरवशाली परम्परा नारी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण रखती है। जिसका मनन् आवश्यक है।
3. नारी विकास के बाधक तत्वों को दुर करना ताकि परिवार, समाज, राष्ट्र निर्माण सुदृढ़ किया जा सके।
4. नारी मध्यकालीन परिस्थितियों से बाहर निकल कर विकास के चरमोत्कर्ष को प्राप्त करे।
5. नारी अपनी घर, परिवार, समाज, राष्ट्र निर्माण मैं अपनी महत्वपूर्ण स्थिति से परिचित् हो सके।

प्राचीन काल में नारी की स्थिति

इतिहासकारों ने वैदिक कालीन समाज व्यवस्था को आदर्श व्यवस्था स्वीकार किया है। वेद ग्रन्थों में नर और नारी दो होते हुये भी एक है। वेद मंत्रों में यही बात कही गयी है कि–

अमोऽह भस्यि सा त्वम्। सा त्वमीस अमोऽहम।
समाहयस्यि ऋक् त्वम। धौरहं पृथिके त्वम्।।

अर्थात् मैं यह हूँ, तू वह है । तू वह है, मैं यह हूँ, मैं साम हुँ, तू ऋक् है, मै द्यौं हूँ, तू पृथ्वी हैं।[1] ऐतरेय ब्राह्मण में नारी को पुरूष के समान अधिकार देकर उसकी सखा के पद पर प्रतिष्ठा की गयी है।[2]

उपनिषदों में भी नारी को पुरूष के समान ही श्रेष्ठता दी गयी है स्त्री पुरूष दोनों एक वृक्ष पर बैठने वाले पक्षी हैं, और दोनों के मेल सहकारिता और सौहार्द्र से ही विश्व की स्थिति हैं।[3]

सिन्धुघाटी सभ्यता में परिवार मातृ सत्तात्मक होता था। तथा माता को अर्थात् नारी को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त था। वैदिक काल में कन्याओं का उपनयन संस्कार किया जाता था।

पुराकल्पे कुमारीणां मौज्जीबधनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा।।

–सत्यार्थप्रकाश

शिक्षित कन्या का विवाह विवृत पुरूष के साथ किया जाता था। वैदिक समाज में यज्ञ आदि कार्यों में स्त्री की सहभागिता आवश्यक थी।

अर्धो वा एष आतमनो यज्जाया।

–शतपथ ब्राह्मण

पत्नीरहित व्यक्ति, यज्ञ के अधिकार से वंचित थे।

अयज्ञों वा होश योऽपत्नीकः

वेद नवबधू को परिवार की साम्राज्ञी बनने का आशीर्वाद देता हुआ कहता है

सम्राज्ञी स्वसुरेभव सम्रज्ञी स्वश्रवांभव।
ननान्दरि सम्राज्ञीभव स्रमाज्ञी अधिदेवृषु।

अर्थात नववधू तुम सास ससुर नन्द और देवरों पर प्रेम का स्रामाज्य स्थापित करो। सब तुम्हारे अनुशासन में जीवन बिताए।

वैदिक कालीन नारी शिक्षित थी। काव्य रचना में प्रवीण थी। वे संगीतिज्ञ होती थी। वे अपने पतियों के साथ युद्व में जाया करती थी। नमुचि के पास पर्याप्त स्त्री सेना थी। सुलभा, मैत्रेयी और गार्गी विश्व प्रतिष्ठत नारियाँ हैं। संतति बच्चा पैदा करने में सक्षम नहीं है, वो नियोग प्रथा द्वारा बच्चा ले सकते थे। इस प्रथा को सामाजिक बुराई के रूप में नहीं देखा जाता था। पुत्री जन्म दुख का कारण नहीं था। पुत्री और पत्नी के रूप में सम्पत्ति पर उसका अधिकार मान्य था। पत्नी को प्रताड़ित करने वाले पति को छोड़ा जा सकता था। पत्नी की परवाह न करके लम्बे समय तक विदेश गमन करने वाले पति को छोड़कर पत्नी दूसरा विवाह कर सकती थी। स्त्री की यौन वर्जनाएं बातों का विषय नहीं था। स्वयं वर प्रथा द्वारा वर चुनने की स्वतंत्रता थी। गृहस्थ आश्रम में पति–पत्नी दानों के

लिए उच्च आर्दशों का निर्वाह समान रूप से किया जायेगा कि कामना की जाती थी। नारी सभा और समिति में भाग लेती थी। प्रश्न कर सकती थी। निष्कर्ष रूप में हम वैदिक काल को महिलाओं का स्वर्ण युग कह सकते है।

वैदिक काल के बाद उत्तरोत्तर स्थिति में धीरे–धीरे परिर्वन आने लगा। उत्तर वैदिक काल में पुत्री का जन्म प्रसन्नता का कारण नही रहा। स्त्री यज्ञों की सम्पूर्ण क्रिया में भाग नही लेती, कुछ क्रियाये पुरोहित द्वारा सम्पन्न की जाती थी। ऐसा कर्मकाण्ड की जटिलता के कारण आरम्भ हुआ जो धीरे–धीरे जड़े जमाने लगा। सम्पति के अधिकार पर कुछ प्रतिबंध लगने लगे। नारी सभा–समिति में भाग लेती थी, पर पारिवारिक जिम्मेदारी के नाम पर प्रतिबंध लगने लगे। तथापि परिस्थिया पूर्ववत् थी। उसका समाज में सम्मान पूर्ववत् ही था। महाकाव्य कालीन समाज में नारी का स्थान धीरे–धीरे परिवर्तित होने लगा। कन्या जन्म दुःख का कारण था। पर उन्हे लक्ष्मी कहा जाने लगा। पिता को कन्या के लिये अच्छे वर की चिन्ता सताती थी। साथ ही विवाह के बाद वह सुख से रहेगी यह चिन्ता सताने लगी थी। समाज में आर्दश का निर्वाह करने की जिम्मेदारी का भार स्त्री पर अधिक डाला गया। शेष परिस्थितिया अभी पूर्ववत् थी। बौद्ध एवं जैन धर्म के प्रभाव से नारी की स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन आया। उन्हें शिक्षा एंव साधना की सुविधा दी गई। मौर्य युग और मौर्योत्तर काल शास्त्रकारों की दृष्टि में नारी के लिए पतिव्रत्य ही परम धर्म है, जिसका पालन करने से वह उस स्वर्गलोक को प्राप्त करने में समर्थ होती है, जिसे महर्षि तथा पवित्र आत्माएं ही प्राप्त कर सकती है। मौर्य युग से राजपूत युग तक नारी का कार्य क्षेत्र केवल घर की चारदीवारी तक ही सीमित रहा। यद्यपि पर्दा प्रथा नहीं थी पर नारी के नैतिक आचरण से समाज की शुद्वता की कल्पना की गयी थी। वास्तविकता यह थी कि उन्हें सन्तान उत्पन्न करने के साधन मात्र में ही देखा गया।[4]

नारी को अब विपरीत परिस्थितियों में वेश्या, गणिका, गायिका और नर्तकी के व्यवसाय अपनाने पड़ते थे।पूर्व मध्यकाल तक आते–आते नारी का आर्दश व मान व्यवहारिक रूप से हटकर केवल शाब्दिक रूप तक ही रह गया था। लेकिन माँ का स्थान सदैव गुरू से उच्च माना जाता रहा है। सामन्ती युग मे नारी को विलासिता की वस्तु माना गया जिससे बहु पत्नी प्रथा को बढ़ावा मिला।

मध्य युग में नारियों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयीं किसी भी वर्ग की महिला को स्वतंत्र रहने का अधिकार नहीं था। उच्च वर्ग की महिला शिक्षा प्राप्त करती थी। लेकिन अधिकतर नारियाँ शिक्षा से वंचित रहती थी। अनमेल विवाह का संताप भी मध्यवर्गीय महिलाओं को झेलना पड़ता था। उच्च वर्ग की मुस्लिम महिलाओं का जीवन स्तर अच्छा था पर उनके पास आर्थिक सुरक्षा नहीं थी। सत्ता में अपना अधिकार न माँग ले इसलिए इन परिवारों में कन्याओं का विवाह नहीं किया जाता था। अनेक कन्याओं को इसी वजह से आजीवन कुँवारी रहने का दण्ड भोगना पड़ा। मध्यकाल में स्वयंवर प्रथा अतीत का विषय बन गयी। मुसलमानों के भय और अत्याचारों के कारण बाल्य अवस्था में विवाह कर देने के नये नियम बनाये गये। इस युग में पर्दा प्रथा भी चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। पति के प्रति स्त्री की इतनी भक्ति हो कि वह पर पुरूष का मुख नहीं देखे। पर्दे के पीछे यह भावना विकसित हुई। भावना में विदेशियों से स्वयं को बचाना भी एक अन्य कारण बन गया।[5]

मध्ययुग में मृत पति के साथ सहगमन स्त्री का त्याग एवं बलिदान माना जाने लगा। सती स्त्री माता पिता तथा पति तीनों कुलों को पवित्र करने वाली कहीं गईं। ब्राह्म आक्रमणों के लगातार भय व नारी जीवन की असुरक्षा की भावना से मृत पति के साथ जलकर मरना उचित समझा जाने लगा।[6] यद्यपि अकबर ने सती प्रथा पर रोक लगाई थी। मध्ययुग के समाज में दास प्रथा ने विकराल रूप धारण कर लिया। मध्ययुग में बड़ी संख्या में दासियों, चेलियों को विवाह के समय के साथ भेजा जाता था। इसके कारण समाज में बहुत अनाचार फैला।[7]

इन विपरीत परिस्थितियों में भी अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से नारी के आदर्श रूप को समाज के सामने रखा जैसे–रजिया, दुर्गाबाद, चाँदबीबी, नूरजहाँ, जहाँआरा, मुमताज महल, अवन्ति सुन्दरी, देवल रानी, रूपमती, पदमावती और मीराबाई आदि। राजपूतों में देवदासी प्रथा का प्रचलन हुआ। यह नारी शोषण का एक अद्भुत तरीका था।

आधुनिक युग में महिलाओं की स्थिति

18वीं शताब्दी में बाल विवाह, अनमेल विवाह और बहुविवाह, प्रर्दा प्रथा, कन्या वध, विधवा विवाह वर्जन, सती प्रथा जैसी कुरीतियों के बीच तड़पती हिन्दु मुस्लिम महिलाएँ देश के विभिन्न भागों में अत्यन्त दुखद दृश्य प्रस्तुत करती थी। जिनका कांई समाधान नहीं दिखाई पड़ता था। अज्ञान और अशिक्षा में जकड़ी भारतीय नारी का जीवन धार्मिक अन्धविशवास एंव बाह्म आडम्बर से परिपूर्ण था। सर्वप्रथम 19 वीं शताब्दीं में लार्ड वेलजली ने प्रख्यात मिशनरी कैरे के साथ छोटी बच्चियों को जन्म के साथ ही गंगा या समुद्र के पानी में डुबाकर मार दिये जाने की कुप्रथा को समाप्त करके हेतु अगस्त 1802 ई. में ब्रिटिश सरकार कानून लायी थी। बंगाल में राजाराम मोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना कर महिलाओं के वैधानिक एवं सामाजिक अधिकारों में अवरोध खड़ी करनी वाली परम्पराओं का विरोध किया।[8]

इस प्रकार 4 दिसम्बर, 1829 ई. को सतीप्रथा को कानून द्वारा असंवैधानिक एंव दण्ड़नीय अपराध घोषित किया गया।[9]

इससे समाज में महिलाओं में भी एक नई सोच को जन्म दिया और स्त्रियों को सती किये जाने के मामलों मे धीरे–धीरे कमी आने लगी। 19वी शताब्दी के अर्ध में बाल विवाह के स्थान पर विवाह योग्य युवतियों की उम्र का निर्धारण और विधवा विवाह को प्रोत्साहन देने के लिए देने के सम्बन्ध में ईश्वर चन्द्र विधासागर द्वारा कार्य किया गया। 26 जुलाई 1856 ई. को विधवा विवाह को संवैधानिक रूप प्रदान किया गया।[10]

ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने स्त्री शिक्षा के लिए अपने पैसों पर 35 कन्या स्कूल खोले। न्याय मूर्ति गोविन्द रानाडे एंव स्वामी विवेकान्द जैसे समाज सुधारकों ने स्त्रियों के उत्थान के लिए जन–चेतना का प्रसार किया।[11]

इस प्रकार 19 वीं शताब्दी के पुर्नजागरण ने महिलाओं मे आत्मविश्वास, शिक्षा, बाल विवाह एवं सती प्रथा पर प्रतिबंध, विधवा विवाह को प्रोत्साहन 1850 ई. में बहुपत्नी प्रथा पर रोक लगाने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। डॉ. मुतू लक्ष्मी रेड्डी ने देवदासी प्रथा को अवैधानिक घोषित किया। 1857 ई. में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में महारानी लक्ष्मीबाई, झलकारीबाई तथा बेगम हजरत महल जैसी महिलाओं ने अपने अदम्य शौर्य और साहस का परिचय दिया।

20वी शताब्दी के आरंभ में शिक्षा की उन्नति के साथ–साथ नारी की स्थिति में भी सुधार हुआ। भारतीय माताओं की शक्ति तथा सामर्थ्य को पहचाना गया। माना गया कि शिक्षा उनका जन्मसिद्व अधिकार है। 1903 में 'इण्डियन नेशनल सोशल कान्फ्रेंस', 1909 में एक स्त्री सम्मेलन का आयोजन किया गया।[12]

1910 में इलाहाबाद में दूसरा स्त्री सम्मेलन हुआ। श्रीमती सरला देवी चौधरानी इस सम्मेलन की सचिव थीं। इन सभा सम्मेलनों के कारण जनमत में परिवर्तन हुआ और नारियों की दशा सुधारने के लिये प्रत्यत्न किये जाने लगे। सबसे पहले ध्यान लड़कों और लड़कियों की विवाह योग्य आयु को बढ़ाने की और किया गया। 1918 तक लड़कियों की विवाह योग्य आयु कम से कम 12 वर्ष और लड़कों की आयु कम से कम 18 वर्ष निर्धारित थी। 1927 में हरिबिलास शारदा के प्रयत्नों से लड़कियों की विवाह योग्य न्यूनतम आयु 14 वर्ष और लड़कों की 18 वर्ष तय कर दी गई।[13]

1937 में केन्द्रीय विधान मण्डल ने हिन्दू नारियों का सम्पत्ति अधिकार अधिनियम पास किया। इस अधिनियम के अनुसार हिन्दु स्त्रियों को अपने पति की सम्पति में कुछ अंश मिलने लगा।[14]

भारतीय इतिहास में बीसवीं शताब्दी 1919 से 1947 तक काल गांधी युग के रूप में जाना जाता है। इस काल में महिलाओं में अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न की। गांधी जी ने नारियों की उन्नति को रचनात्मक कार्यक्रम में शामिल किया था।[15]

आजादी के आन्दोलन में महात्मा गांधी और सुभाष चंद्र बोस और सर सैयद अहमद खां की प्रेरणा से महिलाओं बढ़–चढ़ कर भाग लिया। इस आन्दोलन में महिला आत्म रक्षा समिति से सम्बन्धित औरतों ने मूलभूत आवश्यकताओं के मांग हेतु आंदोलन किये।

वर्तमान में महिलाओं की स्थिति

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् तथा आधुनिक शिक्षा के परिणाम स्वरूप धीरे–धीरे नारी की स्थिति में परिवर्तन आ रहे हैं। नारी जो पुरूष पर पूर्णतः आश्रित थी, आत्मनिर्भर होकर अपनी स्थिति की मजबूत कर रही है। उसकी मानसिकता धीरे–धीरे परिवर्तित हो रही है। लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के अनुसार–''अभी तक व्यक्तित्व को विराटता एवं विशिष्टता का जो सर्वाधिकार पुरूषों के पास था वह सही अर्थों में नारियों तक भी पहुँचा''।[16]

भारत के संविधान निर्माताओं ने भी स्वीकारा कि राष्ट्र के सच्चे विकास के लिए महिलाओं के साथ लिंग क आधार पर कोई भेदभाव नहीं बरता जाये और इसी उद्देश्य से संविधान की धारा 14, 15 एवं 16 में महिलाओं के लिए समानता, स्वतंत्रता और न्याय की पर्याप्त व्यवस्था की गयी है। स्वतंत्र भारत का संविधान कल्याणकारी राज्य की संकल्पना के साथ जीवन और समाज के प्रत्येक क्षेत्र में महिला और पुरूष दोनों को बराबर के अधिकार प्रदान करता है। भारतीय लोकतन्त्र का संविधान पुरूषों की भांति महिलाओं को भी मूलभूत अधिकार प्रदान करता है। स्त्रियो की शिक्षा और रोजगार के समान अवसर मिलते ही आधुनिक भारत के निर्माण में पुरूषों के साथ अग्रसर हैं। उन्होंने विज्ञान, तकनीकी और कला के क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं। चाहे खेल का मैदान हो, या युद्ध का, महिलाओं ने मोर्चा संभाल लिया है और पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर समाज और राष्ट्र के निर्माण में संलग्न हो गयी हैं। राजनैतिक क्षेत्र में प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री तथा महामहिम राष्ट्रपति के पदों पर आसीन महिलाएँ भारत के स्वस्थ समाज की तस्वीर उजागर कर रहीं हैं। यही नहीं 21 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक नया परिर्वन दृष्टिगोचर होता है। समाज की सोच में महिला एवं पुरूष की सहभागिता आवश्यक प्रतीत होने लगी। महिलायें आज टीचिंग, एडवरटाइजिंग, एअर हास्टेस, लोको पायलट, एडवोकेट, फैशन डिजाइनर, जर्नलिज्म, बिजनेश एग्जीक्यूटिव, खेल आदि में अपना प्रतिनिधित्व कर रही है। श्रीमति इन्दिरा गाँधी, विजयलक्ष्मी पण्डित, सुमित्रा महाजन, उमा भारती, शीला दीक्षित तथा प्रतिभा पाटिल, वसुन्धरा राजे आदि महिलाए राजनीति में एव राष्ट्र निर्माण में अपनी छाप छोड़ चुकी है। आज पंचायतीराज प्रणाली के जरिये हजारों महिलाएँ अपनी सेवाएं दे रही है। आज उच्च स्तर की प्रशासनिक और पुलिस संवाओं में भी स्त्रियों की संख्या बढ़ती जा रही है। कृषि की चतुर्मुखी उन्नति के पीछे ग्रामीण महिलाओं का बड़ा यांगदान है। भारत में लगभग 70 प्रतिशत कृषि कार्य ग्रमीण महिलाओं द्वारा सम्पादित होता है। श्रमिक रूप में भी महिलाए अपना योगदान दे रही है। वर्तमान में संघ व राज्य सरकारों तथा अनेक स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से महिला विकास सुरक्षा व कल्याण के लिए स्वयं सिद्ध योजना, मनरेगा, जैसी अनेक योजनाएँ एवं कार्यक्रम चलाए जा रहे है। वर्ष 2001 भारत सरकार द्वारा महिला सशक्तिकरण के रूप में मनाया गया। महिला सशक्तिकरण पृ. 8, कुरूक्षेत्र। महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए अनेक कानून बनाये गये है। घरेलू हिंसा से बचाने के लिए अधिनियम 2006 लागू किया गया। पीड़ित महिला को निशुल्क सलाह की सुविधा व आवश्यकता होने पर वकील और धन भी सरकार की और से उपलब्ध कराया जाता है। सन् 2013 में कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न रोकने के लिए नियम बनाये गये। तमाम आर्थिक, सामाजिक और वैज्ञानिक प्रगति और हर कदम पर स्त्री की भागीदारी के बावजूद स्त्री की लड़ाई वहीं की वहीं हैं–समाज में अपनी वर्चस्व की लड़ाई। जन्म का मामला हो, पढ़ाई–लिखाई, घरेलु या साधारण कामकाजी औरत या किसी वरिष्ठ सरकारी पद और संसद, विधानसभा को सुशोभित कर रही विशिष्ट महिलाओं का हर जगह, हर स्तर पर स्त्री के प्रति दोहरे व्यवहार का मुख्य कारण– 1. गैर बराबरी, 2. स्त्री के अधिकार को नकारने की प्रवृत्ति, 3. स्त्री क्षमता के प्रति संदेह की प्रवृत्ति। पति के

साथ घर के लिए धनोपार्जन करने वाली महिलाए अपने वेतन से कुछ करने से पहले परिवार या पति से अनुमति लेती है। यद्यपि महिलाएँ जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पुरूषों के समान भागीदारी कर रही है। स्वयं निर्णय लेने में सशक्त हो रही हैं लेकिन इन महिलाओं की संख्या काफी कम है। ज्यादातर महिलाएँ आज भी शोषित है, ग्रामीण क्षेत्र की शिक्षित और अशिक्षित महिलाओं में जागरूकता का अभाव है। साथ ही स्वतंत्र निर्णय क्षमता का अभाव है। कारण, अशिक्षा, अज्ञानता, जागरूकता की कमी, आत्मविश्वास व आत्मनिर्भरता का अभाव, सामाजिक परम्पराएं व रूढ़ियाँ, पारिवारिक असहयोग, पुरूषवादी मानसिकता, अवसरों की कमी, भ्रष्टाचार और संचार साधनों की कमीं। वे सम्पति के स्वामित्व से वंचित है। कुछ पुरूषों ने अपनी पत्नियों के नाम जमीन खरीदी है किन्तु उन्हे सशक्त बनाने के लिए नहीं बल्कि रजिस्ट्रेशन की फीस बचाने हेतु । ग्रामीण, श्रमिक और असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाएं घर बाहर दोनो की जिम्मेदारी उठा कर तनाव और स्वास्थ्य की समस्याओं से पीड़ित है। इनमें दलित महिलाओं की स्थिति और भी चिन्ताजनक है, भारत में पहली दलित महिला महापौर अरूणा सैन्या बनी। भारत में अब तक 14 महिलाएं मुख्यमंत्री बनी, जिसमें से एक मात्र दलित मुख्यमंत्री महिला सुश्री मायावती थी। भारतीय लोकसभा की अध्यक्ष एकमात्र दलित महिला मीरा कुमार थी। अब तक भारत में 13 महिला राज्यपाल बनी जिनमें एक भी दलित नहीं हैं, सामान्यता दलित महिलाओं की स्थिति और भी दयनीय है। महिला आयोग की रिपोर्ट के अनुसार, असम, बिहार, छतीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, झारखण्ड, मध्यप्रदेश के 50 से अधिक जिलों में दलित महिलाओं को डायन बताकर उन पर कई बार स्वर्ण जाति के दबंगों के द्वारा कई बार अपनी ही जाति के लालची लोगों द्वारा अमानवीय अत्याचार किये जाते है। यद्यपि सरकार ने सन् 1999 में एक कानून बनाकर डायन प्रथा पर रोक लगाई। ऐसा करने वालों पर 6 माह की जेल और 2000 रू. जुर्माना लगाया है। जो काफी नहीं है। क्योंकि इस जुर्म की शिकार महिला जिस शारीरिक और मानसिक पीड़ा से गुजरती है। उसे शब्दों में कहना सम्भव नही है, अतः सशक्त कानून बनाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

भारतीय नारी जीवन की विभिन्न काल समाजिक परिस्थतियों में अध्ययन मनन् करने पर एक सच सामने आता है, कि प्रकृति की संरचना के दो रूप स्त्री और पुरूष को शारीरिक सरचंना के आधार पर ही अंतर किया जो जीवन चक्र को बनाये रखने के लिए जरूरी था। भारतीय संस्कृति की गौरवशाली परम्परा में हमें स्त्री–पुरूष के दुसरे के सहभागी महसूस होते है, जहाँ न दोनों में तनाव है, न प्रतिस्पर्द्धा। पर समय के साथ–साथ जन से जनपद, जनपद से राज्य, और राज्य से राष्ट्र निर्माण की लालसा ने स्त्री पर पारिवारिक जिम्मेदारी डाली। युद्ध में जीवन के प्रति भय और आतंक से भयभीत पुरूषों ने स्त्रियों की सुरक्षा के तहत पाबंदिया लगाई पर उस पर अत्याचार नहीं किये। औरत घर में सिमटने लगी और पुरूष बाहरी क्षेत्र में। इसी स्थिति को महिलाओं द्वारा अपना लेने से पुरूषों में अहंकार का जन्म हुआ और अपनी सुरक्षा के लिए वह पुरूष वर्ग पर निर्भर हो गयी। मध्यकाल में मुस्लिम आक्रान्तों के भय से नारी जीवन की अस्मिता पर खतरा मंडराता हैं और सामाजिक ताना–बाना अनेक बुराईयों से भर जाता है, चूँकि इस काल को लम्बे समय तक भुगतना पड़ा, इसलिए मानसिक स्तर पर अभी भी मध्यकालीन बुराईया जड़े जमाये बैठी हैं। यद्यपि महिलाओं पर पाबंदियाँ लगाने वाला भी पुरूष समाज था, और उन पर हो रहे अत्याचारों से द्रवित होकर आवाज उठाने वाला भी पुरूष वर्ग है। स्वतंत्र भारत ने अपनी भारतीय संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का अनुसरण करते हुए हर एक स्तर पर स्त्री और पुरूष में कोई भेद नहीं रखा। सशक्त कानूनों के माध्यम से उसे हर स्तर पर समानता देने का प्रयास किया, तथापि जो स्त्री–पुरूष में असमानता दिखाई देती है, उसका जिम्मेदार हर वो परिवार, समाज है जो मध्यकालीन बुराईयों में आस्था रख रहा है। वो स्त्री और पुरूष भी जिम्मेदार है जो या तो मध्यकालीन सोच मे विश्वास रखते है। या अपने विकास में एक दूसरे को प्रतिस्पद्धी के रूप में देखते है। स्वतंत्र भारत ने कानूनों के माध्यम से महिलाओं को स्वतंत्र वातावरण दिया है। तभी महिलाओं ने अपना विकास किया है आज आवश्यकता मध्यकालीन सोच से बाहर आने की है और भारतीय संस्कृति के गौरवशाली परम्परा अनुसार जीने की है, जहाँ स्त्री–पुरूष में कोई भेद नहीं था। तभी सच्चे अर्थो में राष्ट्र निर्माण समभव है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *पाठ वेद के साथ निम्न ग्रन्थों में उल्लिखित अथर्व 14/2/71, एतरेय 8/27, आश्यलायन ग्रह सूत्र 1/10/15*
2. *डॉ. सूतदेव हंस–उपन्यासकार चतुरसेन के नारी पात्र*
3. *डॉ. गजानन शर्मा, प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, पृ. 68*
4. *कौटिल्य अर्थ शास्त्र 6/3/11*
5. *गौरीशंकर हीराचन्द ओझा निबंध संग्रह,भाग1,पृष्ठ, 41*
6. *उसत्तरा अभिलेख, डॉ. भण्डारकर इन्सक्रिशन्स ऑफ नार्दन इण्डिया पृ. 423*
7. *आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव मध्यकालीन भारतीय संस्कृति पृष्ठ–50*
8. *हरिहरदास तथा समिताि महा पात्रः द इण्डियन रिनाइसा एण्ड राजाराम मोहन पृ.–47*
9. *चौपड़ा पुरी एम. एन. दस, भारत का सामाजिक एंव सांस्कृतिक इतिहास 3, पृ.129*
10. *वही पृ.129*
11. *विपिन चन्द्र, मार्डन इण्डिया पृ.131*
12. *डॉ. नातिका अस्थाना, सोशल ट्रस्ट फॉरमेशन ऑफ यू. पी. वीमेन (1900–1947), पृष्ठ–71*
13. *वही*
14. *वही*
15. *डॉ. के. रतनम्– गांधी फिलोसफी ऑफ वान–व्यालेन्स एण्ड इम्पेक्ट आन फ्रीडम स्ट्रगल ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 137–139।*
16. *लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय–हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ पृ. 125*